कलिका



ऋचा

कलिका

(हिन्दी कविता संग्रह)

ऋचा

ऋचा प्रकाशन
15/2 त्रिकुटा नगर,
जम्मू तवी ।

KALIKA

(A collection of Hindi Poems)

By

Richa

प्रकाशक :

ऋचा प्रकाशन

15/2 त्रिकुटा नगर,

जम्मू तवी।

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चन्द, जालन्धर।

प्रथम संस्करण : 500 सन् 1991

मूल्य : 15/-

आभार

आर्थिक सहायता के लिए जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ का आभार

आशीर्वाद

ऋचा के प्रथम काव्यात्मक प्रयास को आशीर्वाद देते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। विज्ञान क्षेत्र में अनुसन्धानात्मक विचरण करते ऋचा ने जो काव्य लोक के विशेष ज्ञान का परिचय दिया है वह न केवल मेरे लिये अपितु पाठक वर्ग के लिये सुखद आश्चर्य का कारण बनेगा। कला एवं विज्ञान कितने सिमट आये हैं इस नन्ही लेखिका के व्यक्तित्व में। 'नन्ही' शब्द का प्रयोग आयु के कारण है, लेखन अथवा भावानुभूति का इससे कोई संबंध नहीं। सच है न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्षते। वास्तव में कोई बड़ा काम करने के लिये कोई आयु छोटी नहीं होती। लेखिका के भाव वैविध्य एवं उद्गारोत्कर्ष ने चौंका दिया। कभी लगा छायावाद की छाया तले लिखी कविता है तो दूसरी ही कविता में प्रगतिवाद मूर्त्ति-मान सा होता दिखाई दिया। 'स्नेह' तो कई कविताओं का आधारभूत था। वह स्नेह मां के प्रति भी था, प्रकृति के प्रति भी, राष्ट्र प्रेम का शंखनाद भी था उसमें, एवं भोले भाले शिशु वर्ग के लिये भोली सरल शैली का भी प्रयोग था। शब्दों का भी भण्डार-सा दिखाई दिया। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्रा का संस्कृतगर्भित हिन्दी पर आधिपत्य कई एक के लिये ईर्ष्या का कारण भी हो सकता है। इसमें धारण हिन्दी भाषा प्रेम एवं परिवार के संस्कार दोनों ही हो सकते हैं। अनुभूति की तीव्रता ने प्रभावित किया। अभिव्यक्ति अभी और पनपेगी। प्रथम प्रयास के लिये वह भी सराहनीय है। कहीं लगता है मुझ से अत्यन्त व्यस्त होने के कारण इस पुस्तक से पूरा न्याय भी न हो सका।

परन्तु देखते-2 बड़ी होती इस कवयित्री को आशीर्वाद देने के लोभ का संवरण न कर पाई।

ऋचा की पुनीततम काव्यात्मक वाणी उत्तरोत्तर अपने पथ पर अग्रसर होती गम्भीरतर होती जायें एवं यह कलिका पुष्प बने फिर सुमन गुच्छ की गरिमा को प्राप्त करें—ऐसी मेरी इच्छा ही नहीं आशा भी है—अपितु आशा ही नहीं विश्वास भी है।

तिथि 1 जनवरी 1991 □ रीता जितेन्द्र

जम्मू

अपनी बात

मेरी इस छोटी सी कविता यात्रा का प्रारम्भ तब हुआ जब माँ की विदेश यात्रा के कारण ग्यारह वर्ष की आयु में मुझे वर्ष भर के लिए उससे अलग रहना पड़ा। उन्हीं दिनों की पहली रचना थी 'माँ' जिसे इस संग्रह में भी मैंने स्थान दिया है। स्कूल के उन दिनों में कई छुटपुट कवितायें लिखीं जिनमें से कुछ इस संग्रह में भी सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में और लिखने की प्रेरणा तब मिली जब नवम श्रेणी में पढ़ते हुए मुझे गुरुजनों ने स्कूल की श्रेष्ठ बाल कवयित्री का पुरस्कार प्रदान किया। इन पंक्तियों को कविता कहना भी मेरे लिए कठिन है क्योंकि ये तो मन के भाव मात्र हैं। जीवन में अनेक क्षण ऐसे आते हैं जब सुख-दुख, आशा, निराशा, विवशता, आनन्द और स्नेह आदि की अनुभूतियाँ भावाभिव्यक्ति के लिए मन को विवश कर देती हैं और उन भावों को पन्नों पर अंकित कर देने से मन को राहत सी मिलती है। मैंने इन कविताओं के माध्यम से यही कुछ किया है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मेरे आदरणीय माता-पिता और भाई वीरभानु ने मुझे सदा आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया है। उनके वरदहस्त सदा मुझे सम्बल देते रहें यही प्रभु से मेरी प्रार्थना है। इस पुस्तिका के प्रकाशन में श्री श्यामलाल रैना ने बड़ी रुचि ली है इस के लिए में उनका धन्यवाद करती हूं।

मैं जम्मू की साहित्य और कला क्षेत्र की जानी-मानी विदुषी तथा राजकीय महाविद्यालय परेड ग्राउण्ड की प्राचार्या श्रीमती रीता जितेन्द्र का धन्यवाद करती हूं जिन्होंने अपनी व्यस्त जीवनचर्या में से समय निकाल कर आशीर्वचन लिख कर मुझे अनुगृहीत किया है।

15/2 त्रिकुटानगर
जम्मू तवी

ऋचा

सूची

कैसे मैं जाऊँ

⊙

कैसे अपनी नगरी छोड़ूँ दूर यहाँ से कैसे जाऊँ
आली अपने व्याकुल मन को बार-बार अब कैसे समझाऊँ

कैसे बिछड़ूँ इस मिट्टी से इन फूलों से इन कलियों से
मोहबन्ध को कैसे तोड़ूँ जिसने बांधा इन गलियों से
कैसे मैं इन सब की यादें आँचल में भरकर ले जाऊँ

कैसे भूलूँ उन सखियों को जिनके संग बीता है बचपन
कैसे छोड़ूँ उन्नत पर्वत नदियाँ औ झीलों के दर्पण
अपनी धरती अपना आंगन संग संग कैसे ले जाऊँ

ठिठकी ठिठकी रह जाती हूँ पाँव नहीं बढ़ते हैं आगे
व्याकुल मन बस मीठी मीठी, यादों के ही पीछे भागे
कैसे पिछले नाते तोड़ूँ नूतन को कैसे अपनाऊँ

□

नारी से

⊙

नारी तुम कितनी भोली हो
छली ही जाती हो सर्वदा

तुमने भी धन्य समझा स्वयं को
जननी पत्नी और सुता बनकर
पर स्वयं का मूल्य तुम भूल गईं
इन पुरुषों की छाया बन कर

और पुरुषों ने जब चाहा रखा
फिर जब चाहा त्याग दिया
सामान्य पुरुष की बात ही क्या
राम ही ने परित्याग दिया

तुम भी भूली हो अपना मूल्य
परिस्थितियों से सन्धि कर ली
मोह का जाल बुन स्वयं हो गई
बन्दी रेशम के कीड़े सी

तुम तो थीं निर्दोष अहल्या
गौतम ने नहीं जाना पर
देवों तक ने तो छला तुम्हें
पाषाण बनीं शापित होकर

जननी बन क्या पाया तुमने
पुरुषों ने तुम्हें न मान दिया
परशु ने पिता की कथनी से
तेरा निर्मम बलिदान किया

अब तो उठो तुम निद्रा से
अब तो इन नयनों को खोलो
उड़ान भरो इस खुले आकाश में
अपने पंखों के साहस को तोलो

फिर छल न पाएगा कभी भी
यह जग तुम्हारा निर्मल मन
दे न पाएगा फिर यह समाज
तुम्हारे दमन को नाम समर्पण

□

मन की पीड़ा

⊙

किसी दुखित के मन की पीड़ा यह जगत् कहाँ सुन पाया ?
किसी व्यथित हृदय की व्यथा बाँटना इसे है कब भाया ?

मन तुम हो चाहे दुःखी आज
पर जग को क्या इस पीड़ा से
वह तो मुस्काता है मदमस्त
हुआ अपनी ही क्रीड़ा से
तुम रोए पर तप्त आँसुओं ने जग का मन कब पिघलाया ?

मन तुम में जब भी धधकी थी
अविरल पीड़ाओं की ज्वाला
भीषण दुःखों की लपटों ने
जब भी तुमको झुलसा डाला
इस जग ने क्या तब आग बुझाने को निज हाथ बढ़ाया ?

तुम रोए तो जग ने समझा
यह पागल गीत सुनाता है
तुम जले जगत् ने यह जाना
यह ढोंगी ढोंग दिखाता है
मन तेरी पीड़ा को जग ने बस खेल समझ निज मन बहलाया।

☐

विद्रोह

⊙

अनिवार्य है क्या जीना, ढोते हुए इन व्यर्थ के
संबंधों के बोझ को
उन संबंधों को, जो मन से नहीं बने
जो अन्तर से नहीं जुड़े
बस हृदय की ऊपरी सतह को स्पर्श करते
बिना उसके भीतर धंसे
गुज़र जाते हैं।
नहीं
बिल्कुल नहीं
यह मेरा विद्रोही मन
कभी भी स्वीकार न कर पाएगा इन्हें
जी न पाऊँगी मैं इनका अनावश्यक बोझ ढोते हुए
केवल इसलिए कि समाज ने दिया है इसका आदेश
मैं क्यों हूँ भयभीत इस समाज से
यह समाज भी तो मेरे ही जैसे लोगों से बना है
मैं भी तो हूँ इसके निर्माण में भागी
तो फिर क्यों नहीं अधिकार मुझे
स्वतंत्रता से जीने का।
है, बिल्कुल है
क्योंकि मैंने इसे छीन लिया है
इसीलिए तो मैंने यह बोझ उतार फैंका है
और केवल स्वीकार किए हैं वही संबंध
जिन्हें मेरे मन ने स्वीकारा है।

हृदय का सागर

⊙

हृदय का सागर तो असीम है कहाँ मिलेगा इसका पार
आशा और निराशा की लहरों का कितना है विस्तार

नाव लघु कल्पना की है
थका नाविक भी है व्याकुल
बढ़ी जाती है तब भी यह
निज किनारे की ओर हो आकुल
पर कैसे पार यह कर पाएगी यह गंभीर पारावार

डोलती रही नैया परन्तु
नाविक ने साहस न छोड़ा
जलधारा की तीव्र लहरों के
विपरीत ही नैया को मोड़ा
कब तक साथ मगर देगी आशा की यह पतवार

□

रे मन

⊙

अनजान बना तू बैठा है मन
न जाने कि बीत गया बचपन

अनभिज्ञ है इतना भी न जाने
परिपक्व है तू जग की दृष्टि में
करना है तय जीवन तुझको
अपने ही बल पर सृष्टि में
उठ जाग छोड़ अब निद्रा और
साकार कर ले अपने सपन

सोच रे कि न रहेगा सर पर
सदा घनी ठंडी छाँव का साया
कर्म किया स्वयं ही जिसने
फल भी तो उसने ही पाया
तू भी ऊँचा उठ जाएगा
बस कर तो ले श्रम का प्रण

□

शान्ति की मशाल

⊙

छोड़ कर सब भेद भाव
भूल कर सब मनमुटाव
फैंक कर सब राग द्वेष
तोड़ झगड़ों का जाल
आओ हम चलें सभी
ले कर शान्ति की मशाल

सब धर्म समान हैं
यही सबके मन में हो
सारा जग अपना घर
यही भाव जन जन में हो
सुख के बादल हों सब तरफ
दु:ख का न कोई साया हो
हर कोई अपना हो
कोई न पराया हो
आओ मिल कर तोड़ दें
परायेपन का यह जाल
आओ हम चलें सभी
लेकर शान्ति की मशाल

सबको आज़ादी दिलाएँ
कोई भी गुलाम न हो
किसी धर्म किसी संप्रदाय का
कहीं भी अपमान न हो
मानवता के आधार पर
मानव सब एक हों
चाहे धर्म अनेक हों
चाहे विचार अनेक हों
रंग जाति भेद कोई भी
न रखे मन में पाल
आओ हम चलें सभी
ले कर शान्ति की मशाल

□

विदा हो रहा चन्द्र अभिराम

⊙

विदा हो रहा चन्द्र अभिराम
रात की यात्रा से थका ढूंढने चला कहीं विश्राम

लिए आया था नया उत्साह
व्योम में उड़ने के सपने
साथ में तारागण भी थे
अनुचर सहचर अनेक अपने

रात भर साथ रहा नभ के फिर आया विदाई का याम
विदा हो रहा चन्द्र अभिराम

सूर्य की प्रखर रश्मियों से
दग्ध हुई थी वसुधा सरसा
चन्द्र ने शीतल किया उसे
निज किरणों से अमृत बरसा

लुटा अपना जीवन अमृत अब चला जा रहा है निष्प्राण
विदा हो रहा चन्द्र अभिराम

प्रफुल्लित कुमुदनियों के संग
रहा करता क्रीड़ा कल्लोल

उन के तरुण लावण्य पर
बिखरा डाली निज ज्योति अमोल

ओस के आँसू पहने तभी सब दिखती हैं म्रियमाण
विदा हो रहा चन्द्र अभिराम

पूर्व दिशा का अरुण रवि जब
कर डालेगा सब कुछ दाह
सायं को तब यह उज्ज्वल चंद्र
बना लेगा नभ में राह
पुन: छा जाएगी उसकी
द्यावापृथिवी पर मुस्कान

विदा हो रहा चन्द्र अभिराम
रात की यात्रा से थका ढूंढने चला कहीं विश्राम

□

क्या होगा आगे जीवन में

⊙

क्या होगा आगे जीवन में
रह रह कर यही प्रश्न भय सा
पैदा कर देता है मन में

सोचा तो था निर्बाध बही जाएगी यह जीवन धारा
पथ में विस्तृत कर देगा मिल नन्हें स्रोतों का जल सारा
पर कहाँ पहुंचना किस पथ से है इतना भी तो ज्ञात नहीं
वायु के झोंके जहाँ ले चलें बह कर जाती है वहीं कहीं
फिर कौन जानता शैलों से टकरा कर टूटे किस क्षण में

क्या होगा आगे जीवन में
रह-रह कर यही प्रश्न भय सा
पैदा कर देता है मन में

□

निर्झर

⊙

झर झर झर झर बहता निर्झर
है श्रान्त पथिक का सा यह स्वर
न जाने कितनी दूर अभी होगी इसकी मंजिल, सागर
झर झर झर झर बहता निर्झर

निर्जन है वन कम्पित हैं मन
लहरें हिलतीं चलतीं प्रतिक्षण
न जाने क्यों नन्हे झोंके से, भी उठता है सिहर सिहर
झर झर झर झर बहता निर्झर

पथ गया भूल पवन प्रतिकूल
फिर किसके बूते पर चले झूल
व्याकुल स्वर में पथ पूछ रहा पर मौन खड़े हैं सब तरुवर
झर झर झर झर बहता निर्झर

निर्झर चंचल तू चिर आकुल
पर हंस हंस चल आगे प्रतिपल
राह पूरी तो करनी ही है चाहेगा चाहे क्रन्दन कर
झर झर झर झर बहता निर्झर

□

जीवन हास या क्रन्दन

⊙

जीवन हास है या क्रन्दन
पूछूं क्या इन पुष्पों से जो मुस्काते रहते हैं प्रति क्षण
इतना बतला सकते हो क्या जीवन हास है या क्रंदन

विधि ने जाने किया हमें
यूँ ही मुस्काते रहने को
जगती के दुःखित प्राणियों के
मुख पर स्मित रेखा लाने को
इस से ही दिन भर हंसते हैं
पर रात्रि रोते कटती है

क्या नहीं दीखते हर प्रभात को हम से चिपटे अश्रु कण

अच्छा तो निज ज्योत्स्ना लुटाते नभ में हैं जो तारागण
इन से ही पूछूँ बोलो तो जीवन हास है या क्रन्दन

दूर से शायद तुम को हम
हिल मिल लगते हंसते हैं

कितनी यह सुखद कल्पना
पर हम तो एकाकी बसते हैं
पग-पग पर बुझती जलती चमक
कदापि हमारी हंसी नहीं है।

यह तो मिलने को उत्सुक तारों के मन की है धड़कन

□

मानव का श्रम

⊙

देखो तो उन सुनहरी बालियों को
जो खेतों में लहरा रही हैं
वे केवल बालियाँ ही नहीं
वे तो प्रतीक हैं मानव के श्रम का

देखो तो कैसी हरियाली छाई है
मन को कर देती है शीतल जो
यह केवल हरित वर्ण ही नहीं
यह तो प्रतीक है मानव के श्रम का

देखो तो अन्न के उस भण्डार को
शान्त करता है जो क्षुधा हमारी
यह केवल क्षुधा का विकल्प ही नहीं
यह तो प्रतीक है मानव के श्रम का

सुधारें हम उन लोगों की दशा
जिनके हाथ देते हैं जन्म इस अन्न को
यही है हमारा कर्त्तव्य और
यही होगा सम्मान मानव के श्रम का

□

'पथिक से'

⊙

पथिक तुम कहाँ चले जग में !
असफलताओं का भार लिए
व्याकुलताओं का सार लिए
नियति से दु:ख उपहार लिए
मन में विषाद संसार लिए
गिरते उठते जीवन मग में
पथिक तुम कहाँ चले जग में !

जब भी चले जिस किसी ओर
वहीं विधि ने दिया झकझोर
दुखित मन में धार वज्र कठोर
चले ही जाते हो रात्रि भोर
लिए शिथिलता पग पग में
पथिक तुम कहाँ चले जग में !

□

कपाट खोल दो

⊙

आने दो भीतर प्रकाश को
हटने दो गहन अंधकार को
कपाट खोल दो

विचरने दो पंछी को आकाश में
ढूँढने दो बसेरा खुद संसार में
बंधन खोल दो

विचरने दो स्वरलहरी को पवन में
उतरने दो संगीत को मन में
तान छेड़ दो

सोच लो यह जीवन है जीने के लिए
ये खुशियाँ ये वसन्त है तुम्हारे लिए
निराशा छोड़ दो

□

कविता से

⊙

रात्रि के गहन अंधेरे में
टूटे खंडहर की ईंटों पर
व्याकुलता के दृढ़ घेरे में
निज श्रान्त क्लान्त मन धर
जैसे भी बैठी हूँ मैं कविते
तुम वैसे ही रहने दो
मेरे नयनों को बहने दो ।

प्रातः की नई अरुणिमा में
पर्वत की ऊँची चोटी पर
अपने गौरव में गरिमा में
निज लघुता को विस्मृत सा कर
जैसे भी गाती हूँ कविते
तुम वैसे ही गाने दो
इन अधरों को मुस्काने दो ।

□

मेरा देश

⊙

मेरे देश सा दुनिया में कोई देश नहीं
ऐसी सुन्दर संस्कृति नहीं ऐसा कहीं परिवेश नहीं

हर धर्म आजादी से इस भूमि में खेलता
अनेकता में एकता है हिन्द की विशेषता
इसके जैसा धर्मप्राण कोई देश विशेष नहीं
मेरे देश सा दुनियाँ में कोई देश नहीं।

जनता को देकर अधिकार गणतन्त्र का दीप जला
शोषण का अधिकार मिटाता सबसे आगे यही चला
इतने गुणों का किसी राष्ट्र में है समावेश नहीं
मेरे देश सा दुनियाँ में कोई देश नहीं।

यहाँ बुद्ध ने प्रेम अहिंसा का हमको गीत सुनाया
हिंसा की लपटों में जलते जग को था शान्त बनाया
प्रेम अहिंसा का मिलता और कहीं संदेश नहीं
मेरे देश सा दुनियाँ में कोई देश नहीं

□

जल यात्रा

⊙

जल धीरे धीरे बहता है
मलयज के झोंकों से कम्पित
चन्द्र ज्योत्स्ना से प्रतिबिम्बित
नभ के तारागण से चुम्बित
तरुदल के मर मर से स्पन्दित
सरिता का जल जाने किस
भाषा में क्या कहता है
जल धीरे धीरे बहता है।

नन्हीं सी लहरें मतवाली
बनीं आज अलकें घुँघराली
अंक लिए ज्योत्स्ना निराली
अजब अनूठी भोली भाली
सरिता का जल न जाने किस
स्वप्नलोक में रहता है
जल धीरे धीरे बहता है।

सागर मिलन आशा से चंचल
बहता चलता है सरिता जल
आशा जग उठती है पल पल
यह भी गा उठता है कल कल
मधुर मिलन की उस आशा में
दु:ख को सुख से सहता है
जल धीरे धीरे बहता है

□

शिक्षक

⊙

शिक्षक है देश का कर्णधार
शिक्षक है एक अनोखा शिल्पकार

कच्ची मिट्टी से गढ़ता है वह मूर्तियां भव्य
महान् वैज्ञानिक कुशल चिकित्सक
विधिशास्त्रवेत्ता निपुण राजनेता
नित प्रतिदिन होती है रचना नव्य नव्य
उसकी भावनाओं की ये मूर्तियाँ साकार

छात्र हैं पथिक और शिक्षक है ज्योति
मार्ग कंटीला हो घना अंधेरा हो
करती है निर्देशन देती है अवलम्बन
ज्योति बिन अंधकार में यात्रा नहीं होती
इस ज्योति का स्रोत शिक्षक ज्ञान का भण्डार

इसी में है गुरुजनों की गरिमा
विद्या को बेचें नहीं विद्या का करें दान
तथा गुरुजनों का भी हो सम्मान
इसी में है शिष्यों की महिमा
फल में नहीं कर्म में है शिक्षक का अधिकार

□

पथ की धूल

⊙

पथिक रे मैं हूँ पथ की धूल

जग ने मुझे सदा ठुकराया
पल पल कुचला और दबाया
पर मैंने तो क्षण भर को भी
नहीं किसी पर रोष मनाया।
सहती हूँ नित नए निरादर
पर जाती हूँ भूल

मैंने सदा कष्ट ही पाया
पीड़ा को निज अंक खिलाया
वर्षों से नीचे दब दब कर
क्षीण बना डाली निज काया
कभी नहीं फिर भी हो पाया
विधि मेरे अनुकूल

जग जीवों ने मुझे सताया
फिर भी मुझमें स्वार्थ न आया
अंकित करने पदचिन्ह हृदय में
मैंने सब को पथ दर्शाया।
मैं हितचिन्तन करती हूँ जग
चाहे हो प्रतिकूल
पथिक रे मैं हूं पथ की धूल

□

गूंजा होता मधुमय गान

⊙

कहीं मिल पाता ऐसा स्थान
जहाँ मन हो सकता जग के
अल छल कपटों से अनजान

स्नेह का बहता जहाँ प्रवाह
हृदय पा लेता जिसकी थाह
पूर्ण हो उठती मन की चाह
निकल अन्तर से फिर अधरों पर
बिखरी होती मृदु मुस्कान

कल्पना के झूलों पर झूल
जहाँ मन जाता सब कुछ भूल
वहीं नन्हीं सरिता के कूल
निकल अन्तर से नभ में
गूंजा होता मधुमय गान

□

मन से

⊙

मन व्यर्थ क्यों होते हो अधीर
क्यों गिरा रहे हो बिन कारण
अपने ही इन नयनों का जल
क्यों बुझा रहे हो इन बूँदों से
अन्तर की अग्नि प्रतिपल
पगले क्या बुझा सकेगा
इस अग्नि को तेरा नयननीर !

जो होना था वह हुआ और
जो होना है वह होगा ही
आएगा जो वह भोगोगे
जो आया था वह भोगा ही
फिर लगा रखी है क्यों यहाँ
चिन्ताओं की मह व्यर्थ भीर
मन व्यर्थ क्यों होते हो अधीर

□

सुखद आशा

⊙

आज बसी क्यों मेरे मन में
सुखद सुखद सी नन्हीं आशा

जीवन के कंटियाले पथ पर
कदम कदम आगे बढ़ना है
चट्टानों से गिरि - शृङ्गों से
अपने ही बल पर लड़ना है
कितना बीहड़ पथ है फिर भी
आज नहीं है तनिक निराशा
आज बसी...........

बड़े - बड़े पाषाण और दुर्गम
खड्डे राह में आयेंगे
सूर्य रश्मियों से अनभिज्ञ
गहन वन मन को दहलायेंगे
कौन जानता है झोंके ये
झंझा के क्या लायेंगे
पर कठिनाई ही जीवन की
है सरल सरल परिभाषा
आज बसी क्यों मेरे मन में
सुखद सुखद सी नन्हीं आशा

☐

गणतंत्र दिवस

⊙

आया है गणतन्त्र दिवस लेकर यह सन्देश
एकता रहे भारत में रहे अखण्ड स्वदेश ।

जिस भारत का कण-कण जोड़ा
इसके वीर योद्धाओं ने
जगत् भर में किया प्रसिद्ध
जिसे इसकी प्रतिभाओं ने
एक रहा बिखरा नहीं यह प्यारा हमारा देश
एकता से भारत में अखण्ड रहे स्वदेश ।

प्रयत्न हुए बिखराव के कई
जब गैरों ने इसे झंझोड़ा था
ऐसे पल भी आये जब
अपनों ने ही इसको तोड़ा था
सौभाग्य रहा हमारा ही जो बचा रहा यह देश
एकता रहे भारत में अखण्ड रहे स्वदेश

अपने ही में संजोए है
यह निराली इक संस्कृति

करती है प्रदान इसे
अप्रतिम सौन्दर्य प्रकृति
मोहक है इसका आकर्षण अनूठा है परिवेश
एकता रहे भारत में अखण्ड रहे स्वदेश ।

करें सदा हम यत्न
यह देश हमारा टूटे नहीं
आतंक हमारी शान्ति को
और चैन को लूटे नहीं
रहे चमकता जग में जैसे
नभ में हो दिनेश
एकता रहे भारत में अखण्ड रहे स्वदेश ।

□

सरिता

⊙

चली सरिता करने अभिसार

प्रिय समुद्र की मिलन आस का
लेकर निज मन में प्रकाश
उसको बन्दी करने को ले
ले तारकमाला का मृदु पाश
अद्रि से निकली कर श्रृंगार
चली सरिता करने अभिसार

ले अंक लहरें लहराती
और चाँदनी नवल मुस्काती
निज सौन्दर्य में मदमाती
अनसुने जा रही कुछ गाती
गीतों में भर कर स्नेह अपार
चली सरिता करने अभिसार

तट वृक्षों के पुष्प रंगीले
लाल हरे नीले औ पीले

चुन-चुन डाल रही आँचल में
प्रकृति के उपहार सजीले
चली प्रिय को देने उपहार
चली सरिता करने अभिसार

मलयज के झोंकों से चंचल
बढ़ती ही जाती है पल-पल
प्रणयभाव भीगे अन्तर के
कथा कहती मृदु कल - कल
अनजाने में प्रकट हुए उद्गार
चली सरिता करने अभिसार

□

मेरे शहर की गलियां

⊙

सब से प्यारी लगती हैं मुझे मेरे शहर की गलियाँ
मेरे कैशोर्य की संगिनी मेरे बचपन की सखियां
मेरे शहर की गलियां

हैं ये मेरे हर राज़ की हमराज़
देखती रहती हैं मेरी आकांक्षाओं की परवाज़
और हरदम सुनती रहती हैं जैसे
मेरे खामोश ख्यालों की खामोश सी आवाज़
इन सब को अपने में समेटे हैं ये खूबसूरत बंद कलियां
मेरे शहर की गलियां

यूँ तो ये रास्ता बनाती हैं हर किसी का
यूँ तो ये दुखदर्द बटाती हैं हर किसी का
कोई इनका साथ दे न दे इस शहर में
ये तो साथ देती जाती हैं हर किसी का
सबको रिझाया करती हैं ये अलबेलियां
मेरे शहर की गलियां

□

लो चली पवन

⊙

मुझे छू कर कुछ कह-कह कर
वह चली पवन लो चली पवन

सुख-दुःख के बीते वे दिन रात
जीवन की बाजी में कभी जीत कभी मात
याद आए मुझे वे सारे क्षण
जब टूटे बने थे कई स्वप्न
लो चली पवन

वह बचपन बीता याद आया
निश्चिन्त अतीत फिर याद आया
उछाह भरा था जब यह मन
वह निश्छल हंसी वह भोला क्रन्दन
लो चली पवन

वे ग्रीष्म ऋतु की सुन्दर शाम
वे शीत ऋतु की दुपहर अभिराम
कभी रिमझिम-रिमझिम बरसता सावन
कभी वसन्त के फूलों का आकर्षण
लो चली पवन

कितने ही स्वप्न बनते हैं हर पल
लहराता है उमंगों का आंचल
जब भी चलती है यह पवन
आनन्द से भरता वन उपवन
लो चली पवन

□

चिन्ता

⊙

निश्चिन्त बह रही है सरिता
निश्चिन्त खड़ा है वह तरुवर
निश्चिन्त पुष्प औ हंस रहे
निश्चिन्त उछलता है निर्झर

ओ चिन्ता क्रूर आसुरी तू
इन पर फन्दा न डाल सकी
फिर मानव हृदय कुचलने को
ओ निर्दय क्यों तू आ धमकी

मानव भोला अनजान बना
आ गया तेरी क्रूर चाल में
तूने भी निर्दय बन बांधा
अपने दृढ़ अदृश्य जाल में

कभी मिटेगी क्या पिशाचिनी
तेरी मानव रक्त पिपासा
या अनन्त तक छाई रहेगी
जग पर तेरी अमिट निरासा

□

लो चल दी मैं उस पार

⊙

भावनाओं की सरिता में
स्वप्नों की नाव पर हो सवार
लो चल दी मैं उस पार

मस्तिष्क ने समझाया बहुत
पर मन ने ना माना
वही किया अन्त में जो
हृदय ने था ठाना
मान कर बैठी हृदय से मैं हार

निश्चय किया अपना भविष्य
खुद ही खुद बनाने का
स्वप्नों का घर बना
यथार्थ से सजाने का
जाना है मुझको अब तो उस पार

□

जीवन पथ पर

⊙

जीवन पथ पर बढ़ते थे मेरे पग
मंज़िल को छूने को आतुर
ध्येय को पाने को मैंने
राह में झेलीं कई कठिनाइयाँ
पाँव में चुभे थे अनेक शूल
आकाँक्षा पूरी होने की चाह में
फूलों को तो मन गया था भूल
बस मंज़िल पाने की चाह में था सजग
जीवन पथ......

पर ज्यों ज्यों बढ़ती चलती थी मैं
ध्येय होता जाता था उतना ही दूर
भ्रमित सी ढूँढती थी मैं उसे हर ओर
मरु के दृष्टिभ्रम की भाँति था वह क्रूर
थक जाती थी जब मैं पग होते थे डगमग
जीवन पथ......

बीत गया चलते कितना जीवन
थक गए पग श्रान्त हुआ तन
पर जारी है अब भी मेरी यात्रा
हैं थका नहीं अभी मेरा मन
साहस बंधाता है आशा का विहग
जीवन पथ......

□

दीपशिखा की यात्रा कथा

⊙

जल दीप शिखा धीरे धीरे
तव ज्योति बुझ न जाए कहीं
मेरी कविता की मधुर पंक्ति
आधी ही रुक न जाए कहीं

चल रही लेखनी है अविरल
तू भी प्रतिपल ही जलती जा
इन काले अक्षरदीपों में
निज ज्योति को तू भरती जा

तुमसे नेह पा पुलकित हो कर
मचल उठे हैं अक्षर चंचल
पर यदि बुझी तुम तो क्षण में
में हो ही जाएँगे सब ओझल

झोंका आया अब समीर का
तुमने भी अनुभव की सिहरन
झिलमिल कर उठीं पंक्तियां ये
देखी इनकी भी सिहरन

उपवन की कोमल कलियों सी
दिखतीं हैं ये भी नवविकसित
नभ में खिल आई तारकमाला
सी कहीं असित है कहीं पै सित

पर ओह यह क्या झपकी में
वायु ने तुम्हें हरा डाला
कविते तुम भी रुक ही जाओ
पवन ने अंत ही कर डाला

□

वहं कोयला खदान की मजदूरिन

⊙

वह जा रही है देखो इक प्रतिमा
परिश्रम की
लिए तपता क्षीणकाय तन
जो
कोयले के आकाश
कोयले की धरती में
रह कर बन गया है
स्वयं कोयले के वर्ण का
जिसके अंतर में
बस रही हैं कोयले की साँसे
उसके मन में, मस्तिष्क में है
कोयले का ही संसार
जहाँ है उसका परिवार
उसके सिवा वह और कुछ नहीं सोचती
और
यही रहेगा उसका संसार
जब तक वह पसीना बहाएगी यहाँ

□

एक प्रश्न

⊙

बता सकता है कोई क्या
कि इस यांत्रिक युग में
सहृदयता कहाँ खो गई है
मानव तो है पर उसके भीतर
मानवता कहाँ खो गई है

भाषा तो बनाई है मनुष्य ने
ताकि समझ सके इक दूसरे के विचार वह
ताकि निकट आ सके इक दूसरे के वह
इसलिए नहीं
कि भाषा के नाम पर वह
अपने साथी की आवाज़ कुचल दे
और
भाषा बन जाए दीवार
दो भाइयों
और
दो मित्रों के बीच
निकट आने के स्थान पर मनुष्य
मनुष्य से बहुत दूर चला गया है
नहीं पिघलता

किसी का दुख देखकर उसका मन
नहीं द्रवित होता किसी का
कष्ट देखकर वह
उसकी विचारशक्ति, उसकी सेवा भावना
उसकी दयालुता कहाँ चली गई है ?
बता सकता है कोई क्या कि इस
यान्त्रिक युग में सहृदयता कहाँ खो गई है ?

□

जीवन का मोह

⊙

कितनी तीव्र होती है जीवन की लालसा
कितना दृढ़ होता है जीवन का मोह
पर जीवन से जुड़ी है मृत्यु
यह तो इक अटल सत्य है।
और
इस सत्य को जानता भी है मनुष्य
पर फिर भी इस शब्द से ही वह
भयभीत हो जाता है।

अनन्त जीवन यात्रा का यह पड़ाव
कितना भयंकर प्रतीत होता है
थकन कितनी भी हो
पर कोई स्वीकार नहीं कर पाता
प्रकृति के इस उपहार को
विधाता के इस आदेश को
प्रसन्नता से, आत्मविश्वास से
बल्कि सब चाहते हैं इस से
दूर भाग जाना

सब जीना चाहते हैं
अमरता का वरदान पाकर
वृद्धावस्था में क्षीणकाय हुआ,
कर्त्तव्यों से मुक्त हुआ वयोवृद्ध भी
और कर्त्तव्यों के बोझ तले दबा हुआ
परेशानियों से घिरा हुआ नवयुवक भी
वह मृत्यु जो कर देती है परेशानियों से मुक्त
वह मृत्यु जो देती है एक नया जन्म
उसे कोई नहीं चाहता स्वीकारना
यही तो है जीने की लालसा
हाँ यही तो है जीवन का मोह

□

भूख

⊙

कभी सोचती हूं
लहू भी तो चीखता होगा
जब देखता होगा
कि इन्सान ही इन्सान को खा जाता है
फिर सोचता होगा
इससे तो जानवर ही अच्छे हैं
जो खाते तो हैं
पर तभी जब उन्हें भूख हो
जबकि इन्सानी भूख तो मालूम नहीं
कब कहाँ किस शक्ल में मौजूद हो

□

तलाश

⊙

यह मेरा देश देश तो नहीं है
बस इक बिखरी हुई चीजों वाला घर है
और हमें तलाश है उसकी जो इन्हें संवार पाए

यह वह चमन है बिखरी पड़ी हैं जिसकी क्यारियाँ
सूखी जा रही हैं जड़ें पौधों की, बदल रहे हैं पेड़ ठूँठों में
हमें तलाश है उसकी जो इन्हें नवजीवन दे पाए।

यह बिखरा घर, यह उजड़ा चमन
आखिर देन किसकी है ?
घर में रहने वालों की
चमन के रखवालों की

पर

इनमें कोई दीखता नहीं
जो इन्हें संभाल पाए
और हम उसी की तलाश में हैं
हाँ हम उसी की तलाश में हैं

□

मेरा वतन

⊙

जल रहा है शोलों की आग में मेरा वतन
ये शोले हैं हिंसा के, घृणा के, वैर के
तुम बुझाओ इन्हें अपने प्यार के पानी से
ताकि जल न जाए यह खिला हुआ चमन

क्यों भाई-भाई का दुश्मन बना है
क्यों मार काट रहा है अपनों को वह
क्यों घर उजाड़ता अपना ही वह
क्यों अपनों के ही खून से सना है

जलाना क्यों चाहते हैं बेटे माँ का आँचल
लगता है दुश्मन ने कोई चाल चली है।
सफल मत होने दो दुश्मन की ये चालें
माँ के बेटो क्रोध से न होओ पागल

बस अब नहीं
अब और न हो यह हिंसा का ताण्डव
इन शोलों में ध्वस्त न हो जाए मेरा वतन
उजड़ न जाए मेरा हरा-भरा यह गुलशन

□

भैया दूज

⊙

कितना सुन्दर कितना अनुपम कितना मधुमय यह त्यौहार
भैया दूज तेरे नाममात्र से छलक रहा है स्नेह अपार

वह देखो नन्ही सी बाला है खड़ी हाथ में थाल लिए
और पास खड़ा है भाई तिलक से अंकित भाल लिए
भैया तुम जिओ युगों तक इन तुतले से शब्दों के आगे
कब ठहर सका है कपटी जग का स्वार्थ भरा झूठा व्यवहार

भाई एक मातृभूमि हित प्राण चला न्यौछावर करने
निज रक्त बहा रण प्रांगण में काली की क्षुधा शान्त करने
है तिलक लगाया मैंने भैया विजयी बन कर ही आना
ये शब्द बहन के कर देते हैं मन में कितना उत्साह संचार

यह तिलक विजय का द्योतक है वीरों को जागृत है करता
माँ की रक्षा हित फाँसी पर चढ़ने की इच्छा है भरता
जब ले विजय तिलक माथे पर भैया युद्धक्षेत्र की ओर बढ़े
बहनों की वाणी में मुखरित हो उठती उनकी जय जयकार

□

पिंजरे की मैना

⊙

पिंजरे की मैना
पिंजरे की मैना
खो गया है स्वर भूल गई तान
जब से पिंजरे की सलाखों में बंध गई जान
गाए भी तो गाए अपने बन्धन के बैना
पिंजरे की मैना

सुख भी मिलें कैद में तो दु:ख से हैं लगते
स्वप्न कितने ही अधूरे मन में हैं सजते
जगते ही बीते उसकी हर रैना
पिंजरे की मैना

यूँ ही जीवन उसका कटता सारे दु:ख है सहती
मूक आँखों की भाषा में पर मुझसे है कहती
मानव को दया न दी जग से यह कहना
पिंजरे की मैना ।

□

मैं नदी किनारे का रोड़ा

⊙

मैं नदी किनारे का रोड़ा
मैं अर्थहीन अस्तित्वहीन
मुड़ पड़ा जिधर जल ने मोड़ा ।

सिकता ने अपनी शुभ्र श्वेत गोदी में जब मुझे खिलाया
तट का चुम्बन करती तरल तरंगों ने जलपान कराया
दिनकर ने भी दिन में तप्त करों से जी भर मुझे तपाया
रजनी में आकर विमल चन्द्र ने हिम किरणों से सहलाया
जाने क्यों मुझ दीन हीन से इन सब ने है नाता जोड़ा

मुख धो सुन्दर रही बनाती मुझे नदी की चंचल धारा
धीरे धीरे चल समीर ने सहज स्नेह से मुझे पुकारा
मुझ जैसे नन्हे पत्थर का पुलक उठा तन मन सारा
वन सलिल के सहज स्नेह से हुआ था मानो मतवारा
जिस ओर चले वायु और जल उसी ओर मैंने मुंह मोड़ा

□

बदलाव

⊙

यह मानव ऐसा तो न था
क्या हुआ इसे आज
क्या हुआ इसे आज सोचो तो

यह सूर्य पहले भी उदित होता, अस्त होता था
दिनचर्या में
वैसे ही जैसे आज का सूर्य
उसी तरह हो गई है दिनचर्या में शामिल
आगजनी लूटपाट और अनेकों की हत्याएं
पर यह सब कुछ पहले तो न था
यह मानव ऐसा तो न था।

पग पग पर खोदता है धरती में गढ़े
दूसरों के ठोकर खा गिरने के निमित्त
और फिर हंसता है निर्दयी अट्टहास उनकी मृत्यु पर
वह इतना क्रूर तो न था
यह मानव ऐसा तो न था।

लड़ता है वह मरता है मिटता है मिटाता है
धर्म के नाम पर
बन गया है हत्यारा मानवता को भूल
अपनों की ही जान लेने खेलता है जान पर
यह सब कुछ पहले तो न था
यह कैसा बदलाव है ?

□

अलगाव की परिभाषा

⊙

अलगाव की परिभाषा
देते हैं लोग
कहते हैं
अलगाव है नदिया के दो कूलों सा
या अलगाव है धरती व आकाश सा
या अलगाव है पूर्व और पश्चिम का सा

मूढ़ हैं वे
अज्ञानी हैं वे
कैसे करते हैं वे अलगाव को परिभाषित
कौन कहता है नदिया के दो कूल
सदा पृथक् ही रहते हैं
कर देता है इक नन्हा सा सेतु उन्हें समीपतर
कौन कहता है धरती व आकाश
अलगाव के प्रतीक हैं

ला देता है दूर से एक क्षितिज उन्हें निकटतम
कौन कहता है पूर्व और पश्चिम
नितान्त अलग हैं

जोड़ देती हैं मानवीय संवेदनाएँ इन्हें
परस्पर
अलगाव तो उपज है केवल हमारे
भ्रान्त मस्तिष्क की
अन्त स्तल की गहराइयों में इसका
कोई स्थान नहीं
जहाँ रहता है केवल अखण्ड स्नेह

□

स्वागत वसन्त का

⊙

वसन्त ऋतु पुनः आई है।
आई है करने हम सबको प्रसन्नता से
अभिभूत
खुशियों का सन्देश देने बन कर
इस सृष्टि की दूत
वसन्त ऋतु पुनः आई है।
किन्तु क्या इसका यह ध्येय पूर्ण होगा ?
क्या इसका यह स्वप्न साकार होगा ?
नहीं !
क्योंकि बेघर वे लोग इसका स्वागत
नहीं कर पाएँगे
जिन्हें समय की पतझड़ ने असमय ही
कुम्हला दिया है।
जिनको मार डाला है हिंसा की पराकाष्ठा ने
जिनको उजाड़ा है धर्म की अंधी आस्था ने
या जिनका दम मानव ही की निर्मित
विषैली वायु से घुटा है।
वे लोग अब यहाँ नहीं होंगे
वे लोग अब नहीं देख पाएँगे
कि
वसन्त ऋतु पुनः आई है।

□

ए मेरे मन

⊙

ए मेरे मन
तू पल में असहज क्यों हो जाता है ?
क्यों नहीं बनता तू सागर की सतह की तरह
शान्त गम्भीर
जो वाष्प बनता तो है पर संयमित होकर
क्यों नहीं बनता तू नदिया के शान्त मधुर
जल सा
जो बहता है गम्भीर हो, शान्त करता है
तृष्णा सब की
तू पल में चंचल क्यों हो जाता है ?

मेरे मन
तू बन जा घनघोर घटा सा
जो है खेतों की पालनहार
तू बन जा सब का जीवनदाता
बन कर उस मन्द सुरभित पवन सा
जो उजड़े उपवन में भी वसन्त ला दे
तू पल में स्वार्थरत क्यों हो जाता है ?

□

बाहर और भीतर

⊙

मुझे लगता है जैसे मेरे अपने
चेहरे पर एक और मुखौटा चढ़ा है
वह मुखौटा हंसता है गाता है चहकता है
परन्तु पूर्णतया तटस्थ रहता है
उसके भीतर का चेहरा
यह मुखौटा अब इक विवशता बन चुका है
मेरी, मेरे जीवन चक्र की, यहाँ तक कि
मेरे उस हृदय की
जो स्पन्दनहीन, भावनारहित सा रहता है
उन यंत्रों की तरह
जो मनुष्य को कम्प्यूटर के
युग की ओर ले जा रहे हैं।

□

उजाले की चाह

⊙

मैं समझ नहीं पाती कि मेरा दोष क्या है
क्यों मुझे सदा अंधेरों का ही पुरस्कार
मिलता है
जितना आगे बढ़ती हूँ मैं उजालों की
खोज में
जितना चाहती हूँ मैं अन्धेरों से बचना
उतना ही प्रकाश मुझ से पल पल दूर
होता जाता है
और असहाय सी विवश सी
रह जाती हूँ मैं
कभी न ढलने वाली रात के
अंधकार में
अकेली ही भटकती हुई किसी सहारे
के लिए
और शून्य में चीखती हुई
मुझे उजाला दे दो।
मुझे उजाला दे दो।

□

भटकन

⊙

आज पुनः यह नगर आज पुनः वह नगर
भटकते हैं हम यात्री डगर डगर
फिर ढूँढते हैं हर नए नगर में
कोई ठौर कोई ठिकाना
पर मिलता नहीं कोई मनभाता ठिकाना
या वह अनभीष्ट है या हम अयोग्य हैं
और दौड़ लगी रहती है
भटकन जारी रहती है।
जैसे
ढूँढता है हृदय कभी इस स्वप्न में
कभी उस स्वप्न में
स्वप्न साकार होने का
एक और स्वप्न
फिर टूटते हैं स्वप्न काँच की तरह
यथार्थ की भूमि पर बिखर जाते हैं
टूटे हुए टुकड़े
पुनः एकत्र करते हैं हम वे टूटे हुए टुकड़े
जोड़ कर उन्हें
बनाते हैं पुन. एक स्वप्न
और
दौड़ लगी रहती है
भटकन जारी रहती है

□

मैं कायर हूँ

⊙

मैं जानती हूँ मैं कायर हूँ
हाँ मैं जानती हूँ मैं कायर हूँ
पर इस कायरता से मैं स्वयं नहीं उबर पाती
मेरा अस्तित्व है
पिंजरे की बन्दिनी उस चिड़िया सा
इतने समय तक पिंजरे में रह कर
भूल गई है जो उड़ान भरना
खुलता भी है जब पिंजरा तो इधर उधर
फुदक कर वापिस आ जाती है वह उसी में
यह भी तो एक भावना है
विवश करती है उसे जो उसी पिंजरे में
रहने के लिए
और
ये संस्कार हैं मेरे
ये बन्धन हैं मेरे समाज के
जो आदेश देते हैं मुझे
अपने ही दायरे में रहने का

और

इस दायरे की रेखा से कभी नहीं जाती मैं

उस पार

शायद इसीलिए

कि मैं कायर हूँ

मैं जानती हूँ कि मैं कायर हूँ

हाँ मैं जानती हूँ कि मैं कायर हूँ

□

रूठ गया भैया

⊙

राखी के दिन रूठ गया मेरा भैया
बताओ उसे मनाऊं कैसे बोलो मेरी मैया

मैया बोली हंस के मुंह में डाल दे टुकड़ा बर्फी का
फिर जल्दी से हथिया लेना नोट दस रुपल्ली का

या फिर उस को ला दे तू इक अच्छी सी पतंग
तब फिर उस पर चढ़ आएगा खुद राखी का रंग

मैया तो हंसी पर मैं थी परेशान
क्या हो गया भैया को देख कर थी हैरान
अब राखी कैसे बाँधू हाय री दैया
राखी के दिन रूठ गया मेरा भैया
बताओ उसे मनाऊं कैसे बोलो मेरी मैया

□

रुचियाँ

⊙

होती है सबकी अपनी अपनी रुचियाँ
पूरी हो जाएं तो होती है खुशियाँ

किसी ने करनी है पढ़ाई
किसी ने करनी है सफाई
किसी ने बनानी है सखियाँ

कोई जमा करता है टिकट
कोई पत्र से आना चाहता है निकट
कोई बूझता है पहेलियाँ

कोई करता है चित्रकला
किसी को पसंद है मूर्तिकला
बनाता है कोई फुलवाड़ियाँ

करता है कोई तैराकी
कोई खेलता है हॉकी
कोई पढ़ता है कहानियाँ

□

नीलगगन

⊙

क्या अनोखा है यह नीलगगन

सुबह को यह होता लाल दिन को सफेद
इस परिवर्तन का है अनजाना भेद
रहता सदा ही अपने में मगन
क्या अनोखा है यह नीलगगन

रात को यह होता है काला
सितारों की गले में शोभित माला
चंदा का पहने हुए कंगन
क्या अनोखा है यह नीलगगन

आती है जब कभी वर्षा
प्रकट करता है यह अपनी हर्षा
खुश रहने की इसकी होती लगन
क्या अनोखा है यह नीलगगन

□

बादल का टुकड़ा

⊙

दूर गगन में कहीं बादल का टुकड़ा
दिखला जाता है कभी कभी मुखड़ा

जब पड़ती हैं बूँदें होती है बरसात
धरती करती है जब आसमाँ से बात
सुनाता है यह तभी अपना दुखड़ा
दूर गगन में कहीं बादल का टुकड़ा ।

स्वच्छ नीले गगन में श्वेत वस्त्र ओढ़े
धरती की सीमा को कहीं पीछे छोड़े
आकाश के आँचल में रहता है सुकड़ा
दूर गगन में कहीं बादल का टुकड़ा ।

जो मिल जाएँ इसे अपने और साथी
माँगने लगता है सूर्य भी इससे माफ़ी
ढक कर सूरज को फिर रहता है अकड़ा
दूर गगन में कहीं बादल का टुकड़ा ।

□

नदिया

⊙

उछलती कूदती बढ़ती जाती है नदिया
कल कल करती शोर मचाती है नदिया
दुर्गम पर्वत में अपनी राह बनाती
ध्येय की ओर बढ़ती जाती है नदिया

आश्रय न जाने कितने जीवों को देती
पौधों का सिंचन कर जीवन यह देती
प्यासे कंठों को शीतल यह करती
सब पर उपकार करती जाती है नदिया
उछलती.........

उच्छृंखल लहरों को बटोरे हुए
भंवरों को कितने समोए हुए
अमूल्य निधियों को संजोए हुए
अपने पथ पर बढ़ती जाती है नदिया
उछलती.........

□

वर्षा

⊙

वर्षा हुई थोड़ी सी मौसम हो गया मजेदार
टप टप गिरती बूँदों में हम हो गए सरोबार

ठहरे हुए पानी में तब चलने लगीं नौकाएँ
गर्म हवाएँ भाग गईं आ गई ठंडी हवाएं
गर्मी के मौसम में जैसे आ गई थी बहार

किसी ने पानी रोक कर बनाया था तालाब
कोई देख कर ले रहा था समुद्रयात्रा के ख्वाब
क्रियाकलापों व स्वप्नों का लग गया अम्बार
वर्षा.........

जैसे वर्षा बुझाती है वसुन्धरा की तृष्णा
वैसे तुम बुझाओ जग की स्नेह की तृष्णा
बुद्धिमान् निकालते हैं वर्षा का यह सार
वर्षा.........

□

वसन्त

⊙

प्यारे प्यारे सुन्दर सुन्दर
फल फूल लाया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

हरे पत्तों वाला मेरे मन भाया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

बूढ़ी सी उस सर्दी को विदा कर आया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

गर्मी के आने का समाचार लाया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

मीठी मीठी फूलों की खुशबू ले आया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

प्यारे प्यारे सुन्दर सुन्दर
फल फूल लाया वसन्त
लौट कर आया वसन्त

□

अन्तर

⊙

एक प्राचीन दृश्य—
वृक्ष के नीचे गुरु आसन पर विराजमान हैं
शिष्यों को प्रवचन देने में ध्यान है
शिष्य बैठे हैं शीश झुकाए
विद्वान् गुरु से विद्या पाएँ
स्नेह से परिपूर्ण गुरु नयन
आदर से परिपूर्ण शिष्य मन
ज्ञान के द्वार खुले एक एक कर
अंधकार पूर्ण हृदय हुए आलोकित ज्ञान पाकर

एक नवीन दृश्य—
एक सुन्दर सुसज्जित भवन
आधुनिक उपकरणों से हुए चकाचौंध नयन
एक बृहत् कक्ष में बैठे हैं शिष्य
गुरु हैं खड़े कैसा विचित्र है दृश्य
खड़े हो गुरु ज्ञान कर रहे प्रदान
शिष्यों का है शिक्षा से हट कर ध्यान
अपने गुरु को उपहास से लज्जित करें
आज्ञा उल्लंघन कर स्वयं को हर्षित करें

अन्तर है यह नई पुरानी पीढ़ी का
उपहार है यह आधुनिकता की ऊँची सीढ़ी का।

□

रात दिन

⊙

पहले रात फिर दिन
नहीं पहले दिन फिर रात
दुनिया के अक्लमंदों को भी
पता नहीं चली यह बात

पहले अंडा फिर मुर्गी
नहीं पहले मुर्गी फिर अंडा
अच्छे अच्छे साइंसदानों का
उखड़ गया है झंडा

पहले पानी फिर बर्फ़
नहीं पहले बर्फ़ फिर पानी
दुनिया कितनी आगे पहुँची
बात नहीं यह किसी ने जानी

□

इतिहास

⊙

हम सबको तंग करता है
यह विषय इतिहास
हम स्कूली बच्चों को
देता है यह त्रास

पुराने लोग चले गए
हमारे लिए छोड़ गए
लिखने वाले लिख - लिखकर
दिमाग के पुर्जे तोड़ गए
जब समझ नहीं आता तो
हम हो जाते उदास ।

इसमें सारे ही लोग हैं
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
अच्छा किया इसने यह
इन सब की बात बताई
इसके सब का मोंमें से
यही तो है कुछ खास

इसमें भरी हैं न जाने
कितने राजाओं की लड़ाइयाँ
आपस में बनती रहीं
और भरती रहीं खाइयाँ
क्रोध द्वेष से गहरी हुई
भरीं तो उपजा हास

जब आती है इस
भूलभुलैया की परीक्षा
माँगते हैं हम प्रभु से
कुछ मेधा की दीक्षा
ताकि याद हो जाए और
प्रश्नों पर लगे न त्रास
हम सबको......

□

बच्चे

○

देश की नींव हो तुम
देश के तुम सहारे हो
ओ भावी नागरिक देश के
तुम कितने प्यारे हो

तुम्हें ही करनी है मेहनत
ताकि बने देश महान्
कह सको तुम सब गर्व से
भारत की हम हैं संतान

छुआछात सब छोड़ो
गरीबी को तुम मिटा दो
ईमानदारी को लाओ
और भ्रष्टाचार मिटा दो

बापू ने जो सोचा था
पूरा नहीं हुआ वह सपना
हिंसा की लपटों में देखो
जल रहा है देश अपना

स्नेह के तुम रूप हो
प्रेम की गंगा बहा दो
भारत को समृद्ध करो
सोने की चिड़िया बना दो

यही हो तुम्हारा ध्येय
यही सपने तुम्हारे हों
देश.........

□

पंछी

⊙

ओ गगन में उड़ते पंछी
कितना प्यारा है तू
तेरी उड़ान है कितनी न्यारी
खुद कितना न्यारा है तू

कभी इस वृक्ष पर
कभी उस चोटी पर
बैठता है तू स्वच्छंद
और निश्चिन्त होकर
फिर उड़ान भरता है
ऊँचे गगन में
मैं भी उड़ूँ संग तेरे
सोचती हूँ मन में
क्या छोटे क्या बड़े
सबका दुलारा है तू

□

माँ

⊙

सबसे प्यारी है माँ
प्यार करती है माँ
अगर पास हो न माँ
तो चुभता है सारा जहाँ

अगर पास ही हो माँ
तो सारी खुशियाँ है यहाँ
दुलार करती है माँ
प्यार भरती है माँ

याद आती है माँ
फिर रुलाती है माँ
जल्दी आ जाओ माँ
चुप करा जाओ माँ

□



ऋचा

जन्म तिथि : 15 एप्रिल 1968

जन्म स्थान : जम्मू तवी

शिक्षा : बी. एस. सी.

जम्मू मैडिकल कालेज में
एम. बी. बी. एस. परीक्षा में
अध्ययनरत